Chapter इकहत्तर

भगवान् की इन्द्रप्रस्थ यात्रा

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह भगवान् कृष्ण ने उद्धव की सलाह मानी और इन्द्रप्रस्थ गये, जहाँ पाण्डवों ने बड़ी धूमधाम से उनकी अगवानी की।

भगवान् कृष्ण की आन्तरिक इच्छा जानकर चतुर उद्धव ने भगवान् को इस प्रकार सलाह दी, ''दिग्विजय तथा राजसूय यज्ञ कर लेने पर राजा युधिष्ठिर अपने सारे मन्तव्यों को—जरासन्ध को पराजित करना तथा आपकी शरण में आने वालों की रक्षा करना तथा राजसूय यज्ञ करना—पूरा कर लेंगे। इस तरह यादवों के शक्तिशाली शत्रु विनष्ट हो जायेंगे और बन्दी राजा छूट जायेंगे तथा दोनों कार्य आपको यश प्रदान करेंगे।

''राजा जरासन्ध का वध केवल भीम कर सकता है और चूँकि जरासन्ध ब्राह्मणों का भक्त है, अत:

भीम को ब्राह्मण का वेश धारण करके जरासन्ध के पास जाकर युद्ध की भिक्षा माँगनी चाहिए। तब आपकी उपस्थिति में भीम उस असुर को पराजित करेगा।''

नारद मुनि, वरिष्ठ यादवगण तथा भगवान् कृष्ण सभी ने उद्धव की योजना की प्रशंसा की। भगवान् कृष्ण अपने रथ पर चढ़ कर इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान कर गये और उनके पीछे पीछे उनकी श्रद्धालु रानियाँ थीं। भगवान् कृष्ण शीघ्र ही उस नगरी में जा पहुँचे। भगवान् का आगमन सुन कर राजा युधिष्ठिर उनका सम्मान करने तुरन्त नगर के बाहर आ गये। युधिष्ठिर ने बारम्बार भगवान् कृष्ण का आलिंगन किया, जिस हर्ष भाव के कारण, उनकी बाह्य जगत की सुधि जाती रही। तब भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा अन्यों ने एक एक करके यथोचित रीति के अनुसार आलिंगन किया या उनके समक्ष नतमस्तक हुए।

जब कृष्ण सबों का उचित सम्मान कर चुके, तो वे नगर में प्रविष्ट हुए। उस समय अनेक वाद्ययंत्रों पर बाजे बज रहे थे और आदरसूचक स्तुतियाँ की जा रही थीं। नगर की स्त्रियों ने अटारियों से उन पर पुष्पों की वर्षा की और भगवान् की रानियों के परम सौभाग्य की प्रशंसा की।

श्रीकृष्ण ने राजमहल में प्रविष्ट होने पर महारानी कुन्ती को नमस्कार किया। उन्होंने भी अपने भतीजे को गले लगाया। द्रौपदी तथा सुभद्रा ने भगवान् को नमस्कार किया। तब कुन्तीदेवी ने द्रौपदी से कहा कि वह कृष्ण की पत्नियों की पूजा करे।

भगवान् कृष्ण ने वहाँ पर कुछ मास रहकर राजा युधिष्ठिर को अनुगृहीत किया। वहाँ रहते हुए वे इधर-उधर भ्रमण करने जाते। वे अर्जुन के साथ रथ हाँकते और उनके पीछे अनेक योद्धा तथा सैनिक रहते।

श्रीशुक उवाच
इत्युदीरितमाकर्ण्य देवऋषेरुद्धवोऽब्रवीत् ।
सभ्यानां मतमाज्ञाय कृष्णस्य च महामतिः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; उदीरितम्—कहा गया; आकर्ण्य—सुन कर; देव-ऋषेः—देवर्षि नारद द्वारा; उद्धवः—उद्धव; अब्रवीत्—बोले; सभ्यानाम्—राजसभा के सदस्यों के; मतम्—मतको; आज्ञाय—जान कर; कृष्णस्य—कृष्ण के; च—तथा; महा-मतिः—अतीव बुद्धिमान।.

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह देवर्षि नारद के कथनों को सुनकर और सभाजनों तथा

कृष्ण दोनों के मतों को जानकर महामति उद्धव इस प्रकार बोले।

श्रीउद्धव उवाच
यदुक्तमृषिना देव साचिव्यं यक्ष्यतस्त्वया ।
कार्यं पैतृष्वस्रेयस्य रक्षा च शरणैषिणाम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-उद्धवः उवाच—श्री उद्धव ने कहा; यत्—जो; उक्तम्—कहा गया था; ऋषिना—ऋषि (नारद) द्वारा; देव—हे प्रभु; साचिव्यम्—सहायता; यक्ष्यतः—यज्ञ करने के इच्छुक (युधिष्ठिर); त्वया—तुम्हारे द्वारा; कार्यम्—की जानी चाहिए; पैतृ-ष्वस्रेयस्य—पिता की बहन का पुत्र का; रक्षा—रक्षा; च—भी; शरण—शरण; एषिणाम्—इच्छुकों का।

श्री उद्धव ने कहा : हे प्रभु, जैसी ऋषि ने सलाह दी है, आपको चाहिए कि आप राजसूय यज्ञ सम्पन्न करने की योजना में अपने फुफेरे भाई युधिष्ठिर की सहायता करें। आपको उन राजाओं की भी रक्षा करनी चाहिए, जो आपकी शरण के लिए याचना कर रहे हैं।

तात्पर्य : देवर्षि नारद चाहते थे कि कृष्ण इन्द्रप्रस्थ जाँय और अपने फुफेरे भाई युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ पूरा करने में सहायता दें। साथ ही राजसभा के लोगों की प्रबल इच्छा थी कि भगवान् कृष्ण जरासन्ध को हरा कर बन्दी बनाये गये राजाओं को छुड़ायें। महामति उद्धव समझ गए कि भगवान् कृष्ण ये दोनों ही काम करना चाहते हैं, अतएव उन्होंने बुद्धिमत्तापूर्वक सलाह दी, जिससे दोनों काम एकसाथ पूरे हो सकें।

यष्टव्यम्राजसूयेन दिक्चक्रजयिना विभो ।
अतो जरासुतजय उभयार्थो मतो मम ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

यष्टव्यम्—यज्ञ सम्पन्न; राजसूयेन—राजसूय अनुष्ठान समेत; दिक्—दिशाओं के; चक्र—पूरा गोला; जयिना—जीतने वाले के द्वारा; विभो—हे सर्वशक्तिमान; अतः—अतएव; जरा-सुत—जरा के पुत्र पर; जयः—विजय; उभय—दोनों; अर्थः—उद्देश्य सहित; मतः—मत; मम—मेरा।

हे सर्वशक्तिमान विभु, जिसने दिग्विजय कर ली हो, वही राजसूय यज्ञ कर सकता है। इस तरह मेरे विचार से जरासन्ध पर विजय पाने से दोनों उद्देश्य पूरे हो सकेंगे।

तात्पर्य : यहाँ पर उद्धव बतलाते हैं कि जिसने सारी दिशाओं पर विजय प्राप्त कर ली हो (दिग्विजयी), वही राजसूय यज्ञ कर सकता है। इसलिए कृष्ण को चाहिए कि इस यज्ञ में सम्मिलित होने का निमंत्रण तुरन्त स्वीकार कर लें, किन्तु उसी के साथ यह आवश्यक है कि जरासन्ध को मारने की व्यवस्था हो जाए। इस तरह राजाओं द्वारा सुरक्षा की याचना स्वयमेव पूरी हो सकेगी। इस तरह यदि

भगवान् एक ही नीति—राजसूय यज्ञ भलीभाँति सम्पन्न होने की नीति—पर अडिग रहेंगे तो सारे उद्देश्य पूरे हो सकेंगे।

श्रील रूप गोस्वामी ने *भक्तिरसामृतसिंधु* में भगवान् कृष्ण के गुणों में से एक गुण ''चतुर'' का उल्लेख किया है, जिसका अर्थ होता है, एकसाथ अनेक कार्य करने की क्षमता। इस तरह भगवान् कृष्ण युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ सम्पन्न करने की इच्छा तथा बन्दी राजाओं की मुक्त होने की इच्छा की जटिल समस्या को निस्सन्देह आसानी से हल कर सकते थे। किन्तु कृष्ण अपने प्रिय भक्त उद्धव को इस समाधान का श्रेय प्रदान करना चाहते थे, इसीलिए वे व्यग्र दिख रहे थे।

अस्माकं च महानर्थो ह्येतेनैव भविष्यति ।
यशश्च तव गोविन्द राज्ञो बद्धान्विमुञ्चतः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

अस्माकम्—हमारे लिए; च—तथा; महान्—महान्; अर्थः—लाभ; हि—निस्सन्देह; एतेन—इससे; एव—ही; भविष्यति—होगा; यशः—यश; च—तथा; तव—तुम्हारा; गोविन्द—हे गोविन्द; राज्ञः—राजाओं को; बद्धान्—बन्दी बनाये गये; विमुञ्चतः—मुक्त कर देगा।

इस निर्णय से हमें बहुत बड़ा लाभ होगा और आप राजाओं को बचा सकेंगे। इस तरह, हे गोविन्द, आपका यश बढ़ेगा।

स वै दुर्विषहो राजा नागायुतसमो बले ।
बलिनामपि चान्येषां भीमं समबलं विना ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, जरासन्ध; वै—निस्सन्देह; दुर्विषहः—दुर्जय; राजा—राजा; नाग—हाथी; अयुत—दस हजार; समः—समान; बले—बल में; बलिनाम्—बलशालियों में; अपि—निस्सन्देह; च—तथा; अन्येषाम्—अन्य; भीमम्—भीम को; सम-बलम्—बल में समान; विना—के अलावा।

दुर्जेय जरासन्ध दस हजार हाथियों जितना बलवान् है। निस्सन्देह अन्य बलशाली योद्धा उसे पराजित नहीं कर सकते। केवल भीम ही बल में उसके समान है।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं कि सारे यादव जरासन्ध के वध के लिए उत्सुक थे, अतः सचेत करने के लिए ही उद्धव ने यह श्लोक कहा था। जरासन्ध की मृत्यु एकमात्र भीम के हाथों सम्भव थी। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि उद्धव ने *ज्योति राग* से तथा अपने गुरु बृहस्पति से सीखे अन्य ज्योतिष ग्रन्थों से यह पहले ही निष्कर्ष निकाल लिया था।

द्वैरथे स तु जेतव्यो मा शताक्षौहिणीयुतः ।
ब्राह्मण्योऽभ्यर्थितो विप्रैर्न प्रत्याख्याति कर्हिचित् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

द्वै-रथे—केवल दो रथों से लड़े जाने वाले युद्ध में; सः—वह; तु—लेकिन; जेतव्यः—हराया जा सकता है; मा—नहीं; शत—एक सौ; अक्षौहिणी—अक्षौहिणी सेना से; युतः—युक्त; ब्राह्मण्यः—ब्राह्मण संस्कृति के प्रति श्रद्धालु; अभ्यर्थितः—सत्कार किया गया; विप्रैः—ब्राह्मणों द्वारा; न प्रत्याख्याति—मना नहीं करता; कर्हिचित्—कभी भी।

उसे एकाकी रथों की प्रतियोगिता में हराया जा सकेगा किन्तु अपनी एक सौ अक्षौहिणी सेना के साथ होने पर वह नहीं हराया जा सकता। और, जरासन्ध ब्राह्मण संस्कृति के प्रति इतना अनुरक्त है कि वह ब्राह्मणों की याचनाओं को कभी मना नहीं करता।

तात्पर्य : यह तर्क किया जा सकता है कि चूँकि भीम ही जरासन्ध के समान बलशाली है, अतएव विशाल सेना के साथ होने पर जरासन्ध और भी शक्तिशाली हो जायेगा। इसीलिए उद्धव एकाकी युद्ध की संस्तुति करते हैं। लेकिन जरासन्ध को उसकी शक्तिशाली सेना से विलग कैसे किया जा सकता था? यहाँ उद्धव संकेत देते हैं कि जरासन्ध ब्राह्मणों की याचना को कभी नहीं ठुकरा सकता, क्योंकि वह ब्राह्मण संस्कृति के प्रति अनुरक्त है।

ब्रह्मवेषधरो गत्वा तं भिक्षेत वृकोदरः ।
हनिष्यति न सन्देहो द्वैरथे तव सन्निधौ ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म—ब्राह्मण का; वेष—वेश; धरः—धारण करके; गत्वा—जाकर; तम्—उससे, जरासन्ध से; भिक्षेत—माँगे; वृक-उदरः—भीम; हनिष्यति—मारेगा; न—नहीं; सन्देहः—सन्देह; द्वै-रथे—रथ से रथ के युद्ध में; तव—तुम्हारी; सन्निधौ—उपस्थिति में।

भीम ब्राह्मण का वेश बनाकर उसके पास जाये और दान माँगे। इस तरह उसे जरासन्ध के साथ द्वन्द्व युद्ध की प्राप्ति होगी और आपकी उपस्थिति में भीम अवश्य ही उसको मार डालेगा।

तात्पर्य : भाव यह है कि भीम को चाहिए कि जरासन्ध से द्वन्द्व युद्ध करने की भीख माँगे।

निमित्तं परमीशस्य विश्वसर्गनिरोधयोः ।
हिरण्यगर्भः शर्वश्च कालस्यारूपिणस्तव ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

निमित्तम्—कारण; परम्—केवल; ईशस्य—भगवान् को; विश्व—ब्रह्माण्ड के; सर्ग—सृजन; निरोधयोः—तथा संहार में; हिरण्यगर्भः—ब्रह्मा; शर्वः—शिवजी; च—तथा; कालस्य—काल का; अरूपिणः—निराकार; तव—तुम्हारा।

ब्रह्माण्ड के सृजन तथा संहार में ब्रह्मा तथा शिव भी आपके उपकरण की तरह कार्य करते

हैं, जिन्हें अन्ततः आप काल के अपने अदृश्य रूप में सम्पन्न करते हैं।

तात्पर्य : उद्धव यहाँ बतलाते हैं कि वस्तुतः भगवान् कृष्ण स्वयं ही जरासन्ध की मृत्यु के कारण बनेंगे, भीम तो मात्र उपकरण रहेंगे। भगवान् अपनी अदृश्य काल-शक्ति के द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का सृजन और संहार करते हैं, जबकि ब्रह्मा तथा शिव जैसे बड़े बड़े देवता भगवान् की इच्छा के उपकरण मात्र रहते हैं। अतएव भीम को बलशाली जरासन्ध का वध करने में तनिक भी कठिनाई नहीं होगी, क्योंकि वे भगवान् के उपकरण की तरह कार्य करेंगे। इस तरह भगवान् की व्यवस्था से उनका भक्त भीम यशस्वी होगा।

गायन्ति ते विशदकर्म गृहेषु देव्यो
राज्ञां स्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणं च ।
गोप्यश्च कुञ्जरपतेर्जनकात्मजायाः
पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो वयं च ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

गायन्ति—गाते हैं; ते—तुम्हारा; विशद—निर्मल; कर्म—कर्म; गृहेषु—अपने अपने घरों में; देव्यः—देवताओं की पत्नियाँ; राज्ञाम्—राजाओं की; स्व—अपने; शत्रु—शत्रु; वधम्—वध; आत्म—स्वयंके; विमोक्षणम्—उद्धार; च—तथा; गोप्यः—व्रजबालाएँ; च—तथा; कुञ्जर—हाथियों के; पतेः—स्वामी के; जनक—राजा जनक की; आत्म-जायाः—पुत्री (सीतादेवी, रामचन्द्र की पत्नी) के; पित्रोः—तुम्हारे माता-पिता के; च—तथा; लब्ध—प्राप्त हुए; शरणाः—शरण; मुनयः—मुनिगण; वयम्—हम; च—भी।

बन्दी राजाओं की दैवी पत्नियाँ आपके नेक कार्यों का—कि आप किस तरह उनके पतियों के शत्रुओं को मार कर उनका उद्धार करेंगे—गायन करती हैं। गोपियाँ भी आपका यशोगान करती हैं कि आपने किस तरह गजेन्द्र के शत्रु को, जनक की पुत्री सीता के शत्रु को तथा अपने माता-पिता के शत्रु को मारा। इसी तरह जिन मुनियों ने आपकी शरण ले रखी है, वे हमारी ही तरह आपका यशोगान करते हैं।

तात्पर्य : ऋषियों-मुनियों ने बन्दी राजाओं की शोकाकुल पत्नियों को बता रखा था कि भगवान् कृष्ण जरासन्ध के वध की व्यवस्था करके उन्हें इस संकट से बचायेंगे। इस तरह ये दैवी स्त्रियाँ अपने घर पर भगवान् के यश का गान करेंगी और जब बच्चे अपने पिता के लिए रोएँगे तो उनकी माताएँ उन्हें बतलायेंगी ''बच्चे! मत रो। श्रीकृष्ण तुम्हारे पिता की रक्षा करेंगे।'' वस्तुतः भगवान् ने विगत भूतकाल में अनेक भक्तों को बचाया है, जैसाकि यहाँ बतलाया गया है।

जरासन्धवधः कृष्ण भूर्यर्थायोपकल्पते ।
प्रायः पाकविपाकेन तव चाभिमतः क्रतुः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

जरासन्ध-वधः—जरासन्ध का वध; कृष्ण—हे कृष्ण; भूरि—बहुत अधिक; अर्थाय—महत्त्व; उपकल्पते—उत्पन्न करेगा; प्रायः—निश्चय ही; पाक—संचित कर्म का; विपाकेन—कर्मफल के रूप में; तव—तुम्हारा; च—तथा; अभिमतः—इच्छित; क्रतुः—यज्ञ।

हे कृष्ण, जरासन्ध का वध निश्चित ही उसके विगत पापों का ही फल है। इससे प्रभूत लाभ होगा। निस्सन्देह इससे आपका मनवांछित यज्ञ सम्भव हो सकेगा।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी व्याख्या करते हैं कि *भूर्यर्थ* शब्द बतलाता है कि जरासन्ध की मृत्यु होने से शिशुपाल को मारना तथा अन्य लक्ष्यों को पूरा करना आसान हो जायेगा। महान् भाष्यकार श्रीधर स्वामी यह भी बतलाते हैं कि *पाक* शब्द सूचित करता है कि राजा लोग अपनी शुद्धता के कारण बचा लिये जायेंगे और *विपाकेन* सूचित करता है कि जरासन्ध अपनी दुष्टता के कारण मरेगा। हर हालत में, उद्धव द्वारा बताई गई योजना राजसूय यज्ञ सम्पन्न किये जाने के लिए अत्यन्त उपयुक्त है, जो भगवान् तथा युधिष्ठिर इत्यादि भगवान् के शुद्ध भक्त पाण्डवों की इच्छा थी।

श्रीशुक उवाच
इत्युद्धववचो राजन्सर्वतोभद्रमच्युतम् ।
देवर्षिर्यदुवृद्धाश्च कृष्णश्च प्रत्यपूजयन् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार कहे जाने पर; उद्धव-वचः—उद्धव के शब्द; राजन्—हे राजन् (परीक्षित); सर्वतः—सभी प्रकार से; भद्रम्—शुभ; अच्युतम्—अच्युत; देव-ऋषिः—देवताओं के ऋषि, नारद; यदु-वृद्धाः—वरिष्ठ यदुगण; च—तथा; कृष्णः—कृष्ण; च—और भी; प्रत्यपूजयन्—बदले में प्रशंसा की।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, देवर्षि नारद, वरिष्ठ यादवजन तथा कृष्ण—सबों ने उद्धव के प्रस्ताव का स्वागत किया, क्योंकि जो सर्वथा शुभ तथा अच्युत था।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी व्याख्या करते हैं कि *अच्युतम्* शब्द सूचित करता है कि उद्धव का प्रस्ताव ''तर्क से पुष्ट'' था। यही नहीं, शुकदेव गोस्वामी *यदु वृद्धाः* शब्द द्वारा विशेष रूप से सूचित करते हैं कि इस प्रस्ताव का स्वागत कनिष्ठ लोग नहीं अपितु वरिष्ठ कर रहे थे। अनिरुद्ध जैसे युवक राजकुमारों को उद्धव का प्रस्ताव रुचिकर नहीं लगा, क्योंकि वे जरासन्ध की सेना से तुरन्त युद्ध करना चाह रहे थे।

अथादिशत्प्रयाणाय भगवान्देवकीसुतः ।
भृत्यान्दारुकजैत्रादीननुज्ञाप्य गुरून्विभुः ॥ १२॥

शब्दार्थ

अथ—तब; आदिशत्—आज्ञा दी; प्रयाणाय—विदा होने के लिए; भगवान्—भगवान्; देवकी-सुतः—देवकी-पुत्र ने; भृत्यान्—सेवकों को; दारुक-जैत्र-आदीन्—दारुक, जैत्र इत्यादि; अनुज्ञाप्य—अनुमति लेकर; गुरून्—अपने गुरुजनों से; विभुः—सर्वशक्तिमान।

देवकी-पुत्र सर्वशक्तिमान भगवान् ने अपने वरिष्ठ से विदा होने की अनुमति माँगी। तत्पश्चात् उन्होंने दारुक, जैत्र इत्यादि सेवकों को प्रस्थान की तैयारी करने का आदेश दिया।

तात्पर्य : यहाँ जिन वरिष्ठजनों का उल्लेख है वे कृष्ण के पिता वसुदेव जैसे महान् व्यक्ति हैं।

निर्गमय्यावरोधान्स्वान्ससुतान्सपरिच्छदान् ।
सङ्कर्षणमनुज्ञाप्य यदुराजं च शत्रुहन् ।
सूतोपनीतं स्वरथमारुहद्गरुडध्वजम् ॥ १३॥

शब्दार्थ

निर्गमय्य—भेज कर; अवरोधान्—पत्नियों को; स्वान्—अपनी; स—सहित; सुतान्—पुत्रों; स—सहित; परिच्छदान्—उनका सामान; सङ्कर्षणम्—बलराम से; अनुज्ञाप्य—विदा होकर; यदु-राजम्—यदुओं के राजा (उग्रसेन) से; च—तथा; शत्रु-हन्—हे शत्रुओं के हन्ता (परीक्षित); सूत—सारथी द्वारा; उपनीतम्—लाया गया; स्व—अपने; रथम्—रथ में; आरुहत्—चढ़ गये; गरुड—गरुड़; ध्वजम्—ध्वजा है, जिसकी।

हे शत्रुहन्ता, अपनी पत्नियों, पुत्रों तथा सामान को भेजे जाने की व्यवस्था कर देने के बाद और संकर्षण तथा राजा उग्रसेन से विदा लेने के बाद भगवान् कृष्ण अपने रथ पर चढ़ गये, जिसे उनका सारथी ले आया था। इस पर गरुड़-चिन्हित पताका फहरा रही थी।

तात्पर्य : उद्धव के प्रस्ताव को मान कर सर्वप्रथम कृष्ण अपनी पत्नियों, परिवार तथा संगी-साथियों सहित पाण्डवों की राजधानी इन्द्रप्रस्थ के लिए चल पड़े। इस अध्याय के शेष भाग में कृष्ण द्वारा इस नगर की यात्रा का और फिर उनके प्रिय भक्तों द्वारा उनके स्वागत किये जाने का वर्णन है। इन्द्रप्रस्थ में कृष्ण ने पाण्डवों को पहले जरासन्ध का वध करके बाद में राजसूय यज्ञ करने की योजना बतलाई। फिर उनकी सहमति से वे भीमसेन समेत दुष्ट राजा से हिसाब-किताब निपटाने गये।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बतलाते हैं कि कृष्ण की पत्नियों को भी राजसूय यज्ञ में बुलाया गया था, अतः वे जाने के लिए उत्सुक थीं। अगले श्लोक से रंग-बिरंगे राजसी जुलूस का वर्णन प्रारम्भ होता है।

ततो रथद्विपभटसादिनायकैः
करालया परिवृत आत्मसेनया ।
मृदङ्गभेर्यानकशङ्खगोमुखैः
प्रघोषघोषितककुभो निरक्रमत् ॥ १४॥

शब्दार्थ

ततः—तब; रथ—रथों; द्विप—हाथियों; भट—पैदल सेना; सादि—तथा घुड़सवार; नायकैः—नायकों समेत; करालया—भयानक; परिवृतः—घिरे; आत्म—निजी; सेनया—सेना से; मृदङ्ग—मृदंग; भेरी—भेरी वाद्य; आनक—दुंदुभी; शङ्ख—शंख; गो-मुखैः—तथा गोमुख शृंगों द्वारा; प्रघोष—शब्द करते हुए; घोषित—ध्वनि-तरंगों से पूरित; ककुभः—सारी दिशाएँ; निरक्रमत्—विदा हुए।

ज्योंही मृदंग, भेरी, दुदुंभी, शंख तथा गोमुख की ध्वनि-तरंगों से सारी दिशाएँ गूँजने लगीं, त्योंही भगवान् कृष्ण अपनी यात्रा के लिए चल पड़े। उनके साथ में रथों, हाथियों, पैदलों तथा घुड़सवारों के सेनादलों के मुख्य अधिकारी थे और चारों ओर से वे अपने भयानक निजी रक्षकों द्वारा घिरे थे।

नृवाजिकाञ्चनशिबिकाभिरच्युतं
सहात्मजाः पतिमनु सुव्रता ययुः ।
वराम्बराभरणविलेपनस्रजः
सुसंवृता नृभिरसिचर्मपाणिभिः ॥ १५॥

शब्दार्थ

नृ—मनुष्य; वाजि—शक्तिशाली वाहकों से; काञ्चन—सुनहली; शिबिकाभिः—पालकियों से; अच्युतम्—कृष्ण; सह-आत्मजाः—अपनी सन्तानों समेत; पतिम्—पति को; अनु—पीछे करती हुई; सु-व्रताः—उनकी साध्वी पत्नियाँ; ययुः—गईं; वर—उत्तम; अम्बर—वस्त्र; आभरण—गहने; विलेपन—सुगंधित तेल तथा लेप; स्रजः—मालाएँ; सु—अच्छी तरह; संवृताः—घिरी हुई; नृभिः—सैनिकों द्वारा; असि—तलवार; चर्म—तथा ढाल; पाणिभिः—जिनके हाथों में।

भगवान् अच्युत की सती-साध्वी पत्नियाँ अपनी सन्तानों सहित सोने की पालकियों में भगवान् के पीछे पीछे चलीं, जिन्हें शक्तिशाली पुरुष उठाये ले जा रहे थे। रानियाँ सुन्दर वस्त्रों, आभूषणों, सुगन्धित तेलों तथा फूल की मालाओं से सजी थीं और चारों ओर से सैनिकों द्वारा घिरी थीं, जो अपने हाथों में तलवार-ढाल लिये थे।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी के अनुसार *वाजि* शब्द सूचित करता है कि भगवान् की कुछ रानियों को घोड़ागाड़ियों द्वारा ले जाया जा रहा था।

नरोष्ट्रगोमहिषखराश्वतर्यनैः-

करेणुभिः परिजनवारयोषितः ।
स्वलङ्कृताः कटकुटिकम्बलाम्बराद्यु-
उपस्करा ययुरधियुज्य सर्वतः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

नर—पुरुष वाहक; उष्ट्र—ऊँट; गो—बैल; महिष—भैंसा; खर—गदहा; अश्वतरी—खच्चर; अनः—बैलगाड़ी; करेणुभिः—हथिनियों द्वारा; परिजन—घर के; वार—तथा जन साधारण के उपयोग वाली; योषितः—स्त्रियाँ; सु-अलङ्कृताः—खूब सजी; कट—घास की बनी; कुटि—झोपड़ियाँ; कम्बल—कम्बल; अम्बर—वस्त्र; आदि—इत्यादि; उपस्कराः—साज-सामान; ययुः—गये; अधियुज्य—लाद कर; सर्वतः—सभी ओर से।

उनके चारों ओर खूब सजी-धजी स्त्रियाँ—जो कि राजघराने की सेविकाएँ तथा राज-दरबारियों की पत्नियाँ थीं—चल रही थीं। वे पालकियों तथा ऊँटों, बैलों, भैंसों, गधों, खच्चरों, बैलगाड़ियों तथा हाथियों पर सवार थीं। उनके वाहन घास के तम्बुओं, कम्बलों, वस्त्रों तथा यात्रा की अन्य सामग्रियों से खचाखच भरे थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि यहाँ पर घरबार के जिन चाकरों का उल्लेख हुआ है, उनमें धोबिनें तथा अन्य सहायिकाएँ सम्मिलित थीं।

बलं बृहद्ध्वजपटछत्रचामरै-
वरायुधाभरणकिरीटवर्मभिः ।
दिवांशुभिस्तुमुलरवं बभौ रवे-
र्यथार्णवः क्षुभिततिमिङ्गिलोर्मिभिः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

बलम्—सेना; बृहत्—विशाल; ध्वज—डंडों सहित; पट—झंडों; छत्र—छातों; चामरैः—तथा चामर पंखों से; वर—उत्तम; आयुध—हथियार; आभरण—गहने; किरीट—मुकुट; वर्मभिः—तथा कवच से; दिवा—दिन में; अंशुभिः—सूर्य-किरणों से; तुमुल—बेहद; रवम्—ध्वनि; बभौ—तेजी से चमक रहे थे; रवेः—सूर्य के; यथा—जिस तरह; अर्णवः—समुद्र; क्षुभित—क्षुब्ध; तिमिङ्गिल—तिमिंगिल मछली; ऊर्मिभिः—लहरों से।

भगवान् की सेना राजसी छाते, चामर-पंखों तथा लहराती पताकाओं के विशाल ध्वज-दंडों से युक्त थी। दिन के समय सूर्य की किरणें सैनिकों के उत्तम हथियारों, गहनों, किरीट तथा कवचों से परावर्तित होकर चमक रही थीं। इस तरह जयजयकार तथा कोलाहल करती कृष्ण की सेना ऐसी लग रही थी मानों क्षुब्ध लहरों तथा तिमिंगल मछलियों से आलोड़ित समुद्र हो।

अथो मुनिर्यदुपतिना सभाजितः
प्रणम्य तं हृदि विदधद्विहायसा ।
निशम्य तद्व्यवसितमाहृतार्हणो

मुकुन्दसन्दरशननिर्वृतेन्द्रियः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

अथ उ—और तब; मुनिः—ऋषि (नारद); यदु-पतिना—यदुओं के स्वामी कृष्ण द्वारा; सभाजितः—सम्मानित; प्रणम्य—झुक कर; तम्—उनको; हृदि—हृदय में; विदधत्—रखते हुए; विहायसा—आकाश से होकर; निशम्य—सुनकर; तत्—उनका; व्यवसितम्—दृढ़संकल्प; आहृत—स्वीकार की गयी; अर्हणः—पूजा; मुकुन्द—भगवान् कृष्ण की; सन्दरशन—भेंट से; निर्वृत—शान्त; इन्द्रियः—इन्द्रियों वाला।

यदुओं के प्रमुख श्रीकृष्ण द्वारा सम्मानित होकर नारदमुनि ने भगवान् को नमस्कार किया। भगवान् कृष्ण से मिल कर नारद की सारी इन्द्रियाँ तुष्ट हो चुकी थीं। इस तरह भगवान् के निर्णय को सुन कर तथा उनकी पूजा स्वीकार करके, उन्हें अपने हृदय में दृढ़ता से धारण करके, नारद आकाश से होकर चले गये।

राजदूतमुवाचेदं भगवान्प्रीणयन्गिरा ।
मा भैष्ट दूत भद्रं वो घातयिष्यामि मागधम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

राज—राजाओं के; दूतम्—दूत से; उवाच—कहा; इदम्—यह; भगवान्—भगवान् ने; प्रीणयन्—उसे प्रसन्न करते हुए; गिरा—वाणी से; मा भैष्ट—मत डरो; दूत—हे दूत; भद्रम्—कल्याण हो; वः—तुम्हारा; घाटयिष्यामि—वध की व्यवस्था करूँगा; मागधम्—मगध के राजा (जरासन्ध) के।

राजाओं द्वारा भेजे गये दूत को भगवान् ने मीठे शब्दों में सम्बोधित किया, ''हे दूत, मैं तुम्हारे सौभाग्य की कामना करता हूँ। मैं मगध के राजा के वध की व्यवस्था करूँगा। डरना मत।''

तात्पर्य : *मा भैष्ट* कथन बहुवचन में है, जो दूत तथा राजाओं के लिए है। इसी प्रकार *भद्रं वः* भी बहुवचन में है, जिसका मनोभाव भी ऐसा ही है।

इत्युक्तः प्रस्थितो दूतो यथावदवदन्नृपान् ।
तेऽपि सन्दर्शनं शौरेः प्रत्यैक्षन्यन्मुमुक्षवः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्तः—कहे जाने पर; प्रस्थितः—चला गया; दूतः—दूत; यथा-वत्—सही-सही; अवदत्—कहा; नृपान्—राजाओं से; ते—वे; अपि—तथा; सन्दर्शनम्—श्रोता; शौरेः—भगवान् कृष्ण के; प्रत्यैक्षन्—प्रतीक्षा करने लगे; यत्—क्योंकि; मुमुक्षवः—मुक्ति के लिए उत्सुक होने से।

इस प्रकार कहे जाने पर दूत चला गया और जाकर राजाओं से भगवान् का सन्देश सही सही सुना दिया। तब स्वतंत्र होने के लिए उत्सुक वे सभी भगवान् कृष्ण से भेंट करने के लिए आशान्वित होकर प्रतीक्षा करने लगे।

तात्पर्य : महान् वैष्णव पंडित श्रील जीव गोस्वामी यहाँ टीका करते हैं कि परिस्थितिवश सारे राजा एकमात्र कृष्ण पर अपनी दृष्टि जमाये रहे।

आनर्तसौवीरमरूंस्तीर्त्वा विनशनं हरिः ।
गिरीन्नदीरतीयाय पुरग्रामव्रजाकरान् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

आनर्त-सौवीर-मरून्—आनर्त (द्वारका राज्य), सौवीर (पूर्वी गुजरात) तथा (राजस्थान का) मरुस्थल; तीर्त्वा—पार करके; विनशनम्—विनशन, कुरुक्षेत्र जनपद; हरिः—भगवान् कृष्ण; गिरीन्—पर्वतों; नदीः—तथा नदियों को; अतीयाय—पार करके; पुर—नगर; ग्राम—गाँव; व्रज—चरागाह; आकरान्—तथा खानों को।

आनर्त, सौवीर, मरुदेश तथा विनशन प्रदेशों से होकर यात्रा करते हुए भगवान् हरि ने नदियाँ पार कीं और वे पर्वतों, नगरों, ग्रामों, चरागाहों तथा खानों से होकर गुजरे।

ततो दृषद्वतीं तीर्त्वा मुकुन्दोऽथ सरस्वतीम् ।
पञ्चालानथ मत्स्यांश्च शक्रप्रस्थमथागमत् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; दृषद्वतीम्—दृषद्वती नदी को; तीर्त्वा—पार करके; मुकुन्दः—कृष्ण; अथ—तब; सरस्वतीम्—सरस्वती नदी को; पञ्चालान्—पञ्चाल प्रदेश; अथ—तब; मत्स्यान्—मत्स्य प्रदेश को; च—भी; शक्र-प्रस्थम्—इन्द्रप्रस्थ में; अथ—और; आगमत्—आये।

दृषद्वती और सरस्वती नदियों को पार करने के पश्चात् वे पंचाल तथा मत्स्य प्रदेशों में से गुजरते हुए अन्त में इन्द्रप्रस्थ पहुँचे।

तमुपागतमाकर्ण्य प्रीतो दुर्दर्शनं नृनाम् ।
अजातशत्रुर्निरगात्सोपध्यायः सुहृद्वृतः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; उपागतम्—आया हुआ; आकर्ण्य—सुन कर; प्रीतः—प्रसन्न; दुर्दर्शनम्—विरले ही दिखने वाले; नृणाम्—मनुष्यों द्वारा; अजात-शत्रुः—जिसका शत्रु न हो, युधिष्ठिर; निरगात्—बाहर आया; स—सहित; उपध्यायः—पुरोहितों; सुहृत्—सम्बन्धियों से; वृतः—घिरा।

राजा युधिष्ठिर यह सुनकर अतीव प्रसन्न हुए कि दुर्लभ दर्शन देने वाले भगवान् आ चुके हैं। भगवान् कृष्ण से मिलने के लिए राजा अपने पुरोहितों तथा प्रिय संगियों समेत बाहर आ गये।

गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा ।
अभ्ययात्स हृषीकेशं प्राणाः प्राणमिवादृतः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

गीत—गीत; वादित्र—तथा वाद्य-संगीत को; घोषेण—शब्द से; ब्रह्म—वेदों की; घोषेण—ध्वनि से; भूयसा—प्रचुर; अभ्ययात्—आगे गया; सः—वह; हृषीकेशम्—भगवान् कृष्ण को; प्राणाः—इन्द्रियों के; प्राणम्—प्राण या चेतना को; इव—सदृश; आदृतः—पूज्य।

वैदिक स्तुतियों की उच्च ध्वनि के साथ साथ गीत तथा संगीत-वाद्य गूंजने लगे और राजा बड़े ही आदर के साथ भगवान् हृषीकेश से मिलने के लिए आगे बढ़े, जिस तरह इन्द्रियाँ प्राणों से मिलने आगे बढ़ती हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् कृष्ण को हृषीकेश अर्थात् इन्द्रियों का स्वामी और राजा युधिष्ठिर द्वारा भगवान् के पास तेजी से जाने को चेतना से इन्द्रियों के उत्सुकतापूर्ण मिलने के समान बतलाया गया है। चेतना के बिना इन्द्रियाँ व्यर्थ हैं—इन्द्रियाँ चेतना के माध्यम से ही कार्य करती हैं। इसी प्रकार जब व्यष्टि आत्माएँ कृष्णभावनामृत अर्थात् भगवत्प्रेम से विहीन हो जाती हैं, तो वे व्यर्थ एवं मायामय संघर्ष में, जिसे *भव* या संसार कहते हैं, प्रवेश करती हैं। राजा युधिष्ठिर जैसे शुद्ध भक्त कभी भी भगवान् की संगति से विहीन नहीं होते, क्योंकि वे भगवान् को सदा अपने हृदय में रखते हैं। फिर भी जब वे दीर्घकालीन वियोग के पश्चात् उनका दर्शन करते हैं, तो उन्हें विशेष आनन्द की अनुभूति होती है, जैसाकि यहाँ पर वर्णन हुआ है।

द्दष्ट्वा विक्लिन्नहृदयः कृष्णं स्नेहेन पाण्डवः ।
चिराद्दृष्टं प्रियतमं सस्वजेऽथ पुनः पुनः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

द्दष्ट्वा—देखकर; विक्लिन्न—द्रवित; हृदयः—उनका हृदय; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण को; स्नेहेन—स्नेह से; पाण्डवः—पाण्डु-पुत्र; चिरात्—दीर्घकाल से; दृष्टम्—देखे हुये; प्रिय-तमम्—अपने अत्यन्त प्रिय मित्र को; सस्वजे—आलिंगन किया; अथ—तत्पश्चात्; पुनः पुनः—फिर फिर।

जब राजा युधिष्ठिर ने अपने परमप्रिय मित्र भगवान् कृष्ण को इतने दीर्घ वियोग के बाद देखा, तो उनका हृदय स्नेह से द्रवित हो उठा और उन्होंने भगवान् का बारम्बार आलिंगन किया।

दोर्भ्यां परिष्वज्य रमामलालयं
मुकुन्दगात्रं नृपतिर्हताशुभः ।
लेभे परां निर्वृतिमश्रुलोचनो
हृष्यत्तनुर्विस्मृतलोकविभ्रमः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

दोर्भ्याम्—अपनी भुजाओं से; परिष्वज्य—आलिंगन करके; रमा—लक्ष्मी के; अमल—निर्मल; अलयम्—घर को; मुकुन्द—भगवान् कृष्ण के; गात्रम्—शरीर को; नृ-पतिः—राजा; हत—विनष्ट; अशुभः—अशुभ; लेभे—प्राप्त किया; पराम्—सर्वोच्च; निर्वृतिम्—हर्ष; अश्रु—आँसू; लोचनः—जिसकी आँखों में; हृष्यत्—प्रसन्न हुआ; तनुः—शरीर; विस्मृत—भूल कर; लोक—संसारी जगत के; विभ्रमः—मायावी कार्यकलाप।

भगवान् कृष्ण का नित्य स्वरूप लक्ष्मीजी का सनातन निवास है। ज्योंही युधिष्ठिर ने उनका आलिंगन किया, वे समस्त भौतिक कल्मष से मुक्त हो गये। उन्हें तुरन्त दिव्य आनन्द की अनुभूति हुई और वे सुख-सागर में निमग्न हो गये। उनकी आँखों में आँसू आ गये और भावाविष्ट होने से उनका शरीर थरथराने लगा। वे पूरी तरह से भूल गये कि वे इस भौतिक जगत में रह रहे हैं।

तात्पर्य : उपर्युक्त भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत *भगवान् श्रीकृष्ण* से है।

तं मातुलेयं परिरभ्य निर्वृतो
भीमः स्मयन्प्रेमजलाकुलेन्द्रियः ।
यमौ किरीटी च सुहृत्तमं मुदा
प्रवृद्धबाष्पाः परिरेभिरेऽच्युतम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; मातुलेयम्—मामा के पुत्र को; परिरभ्य—आलिंगन करके; निर्वृतः—हर्ष से पूरित; भीमः—भीमसेन; स्मयन्—हँसते हुए; प्रेम—प्रेमवश; जल—जल (आँसू) से; आकुल—पूरित; इन्द्रियः—आँखें; यमौ—जुड़वाँ (नकुल तथा सहदेव); किरीती—अर्जुन; च—तथा; सुहृत्-तमम्—उनके सबसे प्रिय मित्र; मुदा—हर्षपूर्वक; प्रवृद्ध—अत्यधिक; बाष्पाः—आँसू; परिरेभिरे—आलिंगन किया; अच्युतम्—अच्युत भगवान् को।

तब आँखों में आँसू भरे भीम ने अपने ममेरे भाई कृष्ण का आलिंगन किया और फिर हर्ष से हँसने लगे। अर्जुन तथा जुड़वाँ भाई—नकुल तथा सहदेव ने भी अपने सर्वाधिक प्रिय मित्र अच्युत भगवान् का हर्षपूर्वक आलिंगन किया और जोर-जोर से रोने लगे।

अर्जुनेन परिष्वक्तो यमाभ्यामभिवादितः ।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य वृद्धेभ्यश्च यथार्हतः ।
मानिनो मानयामास कुरुसृञ्जयकैकयान् ॥ २८॥

शब्दार्थ

अर्जुनेन—अर्जुन द्वारा; परिष्वक्तः—आलिंगित; यमाभ्याम्—जुड़वों द्वारा; अभिवादितः—नमस्कार किया गया; ब्राह्मणेभ्यः—ब्राह्मणों को; नमस्कृत्य—नमस्कार करके; वृद्धेभ्यः—वरिष्ठजनों को; च—तथा; यथा-अर्हतः—शिष्टाचार के अनुसार; मानिनः—माननीय व्यक्ति; मानयाम् आस—सम्मान किया; कुरु-सृञ्जय-कैकयान्—कुरुओं, सृञ्जयों तथा कैकयों को।

जब अर्जुन उनका पुनः आलिंगन कर चुके और नकुल तथा सहदेव उन्हें नमस्कार कर चुके, तो श्रीकृष्ण ने ब्राह्मणों तथा उपस्थित बड़े-बूढ़ों को नमस्कार किया। इस तरह उन्होंने कुरु, सृञ्जय तथा कैकय वंशों के माननीय सदस्यों का सत्कार किया।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने उल्लेख किया है कि चूँकि अर्जुन कृष्ण के समान समझे जाते थे, अतएव जब अर्जुन ने उन्हें नमस्कार करना चाहा, तो कृष्ण ने अर्जुन की बाहें पकड़ लीं, जिससे वह उनका केवल आलिंगन कर सके। किन्तु जुड़वों ने कनिष्ठ होने के कारण झुक कर नमस्कार किया और कृष्ण के चरण पकड़ लिये।

सूतमागधगन्धर्वा वन्दिनश्चोपमन्त्रिणः ।
मृदङ्गशङ्खपटह वीणापणवगोमुखैः ।
ब्राह्मणाश्चारविन्दाक्षं तुष्टुवुर्ननृतुर्जगुः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

सूत—सूत; मागध—मागध; गन्धर्वाः—देवता जो गाने के लिए प्रसिद्ध हैं; वन्दिनः—वन्दीजन; च—तथा; उपमन्त्रिणः—विदूषक; मृदङ्ग—मृदंग; शङ्ख—शंख; पटह—दुंदुभी; वीणा—वीणा; पणव—छोटे ढोल; गोमुखैः—तथा गोमुख शृंगी से; ब्राह्मणाः—ब्राह्मण; च—तथा; अरविन्द-अक्षम्—कमल-नेत्र भगवान्; तुष्टुवुः—स्तुतियों से यशोगान किया; ननृतुः—नाचा; जगुः—गाया।

सूतों, मागधों, गन्धर्वों, वन्दीजनों, विदूषकों तथा ब्राह्मणों में से कुछ ने स्तुति करके, कुछ ने नाच-गाकर कमल-नेत्र भगवान् का यशोगान किया। मृदंग, शंख, दुंदुभी, वीणा, पणव तथा गोमुख गूंजने लगे।

एवं सुहृद्भिः पर्यस्तः पुण्यश्लोकशिखामणिः ।
संस्तूयमानो भगवान्विवेशालङ्कृतं पुरम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सु-हृद्भिः—अपने शुभचिन्तक सम्बन्धियों द्वारा; पर्यस्तः—घिरे हुए; पुण्य-श्लोक—पवित्र ख्याति के व्यक्तियों के; शिखा-मणिः—शिरोमणि; संस्तूयमानः—यशोगान किये जा रहे; भगवान्—भगवान्; विवेश—प्रविष्ट हुए; अलङ्कृतम्—अलंकृत; पुरम्—नगर में।

इस तरह अपने शुभचिन्तक सम्बन्धियों से घिर कर तथा चारों ओर से प्रशंसित होकर विख्यातों के शिरोमणि भगवान् कृष्ण सजे सजाये नगर में प्रविष्ट हुए।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''जब भगवान् कृष्ण शहर में प्रवेश कर रहे थे तो सारे लोग परस्पर भगवान् के यश की चर्चा कर रहे थे और उनके दिव्य नाम, गुण, रूप इत्यादि की प्रशंसा कर रहे थे।''

संसिक्तवर्त्म करिणां मदगन्धतोयैश्

चित्रध्वजैः कनकतोरणपूर्णकुम्भैः ।
मृष्टात्मभिर्नवदुकूलविभूषणस्त्रग्-
गन्धैर्नृभिर्युवतिभिश्च विराजमानम् ॥ ३१ ॥
उद्दीप्तदीपबलिभिः प्रतिसद्म जाल-
निर्यातधूपरुचिरं विलसत्पताकम् ।
मूर्धन्यहेमकलशै रजतोरुशृङ्गै-
र्जुष्टं ददर्श भवनैः कुरुराजधाम ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

संसिक्त—जल से छिड़काव की गई; वर्त्म—सड़कें; करिणाम्—हाथियों के; मद—मस्तक से निकलने वाले तरल के; गन्ध—सुगन्धित; तोयैः—जल से; चित्र—रंग-बिरंगे; ध्वजैः—ध्वजाओं से; कनक—सुनहरे; तोरण—द्वारों से; पूर्ण-कुम्भैः—तथा पूर्ण जलपात्रों से; मृष्ट—सजे हुए; आत्मभिः—शरीरों से; नव—नवीन; दुकूल—उत्तम वस्त्रों से; विभूषण—गहने; स्रक्—फूल की मालाएँ; गन्धैः—तथा सुगन्धित चन्दन-लेप से; नृभिः—मनुष्यों से; युवतिभिः—तरुणियों से; च—भी; विराजमानम्—जगमगाते; उद्दीप्त—जलाये गये; दीप—दीपकों से; बलिभिः—तथा भेंटों से; प्रति—प्रत्येक; सद्म—घर; जाल—खिड़कियों के झरोखों से; निर्यात—बाहर निकल कर; धूप—अगुरु का धुआँ; रुचिरम्—आकर्षक; विलसत्—हिलते-डुलते; पताकम्—झंडियों से; मूर्धन्य—छतों पर; हेम—सोने के; कलशैः—कलशों (गुम्बदों) से; रजत—चाँदी के; उरु—विशाल; शृङ्गैः—मंचों से; जुष्टम्—अलंकृत; ददर्श—देखा; भवनैः—घरों से; कुरु-राज—कुरुओं के राजा के; धाम—राज्य।

इन्द्रप्रस्थ की सड़कें हाथियों के मस्तक से निकले द्रव से सुगंधित किये गये जल से छिड़की गई थीं। रंगबिरंगी झंडिया, सुनहरे द्वार तथा पूर्ण जलघटों से नगर की भव्यता बढ़ गई थी। पुरुष तथा तरुणियाँ उत्तम नए वस्त्रों से सुन्दर ढंग से सजी थीं, फूलों की मालाओं तथा गहनों से अलंकृत थीं तथा सुगन्धित चन्दन-लेप से लेपित थीं। हर घर में जगमगाते दीपक दिख रहे थे और सादर भेंटे दी जा रही थीं। जालीदार खिड़कियों के छिद्रों से अगुरु का धुँआ निकल रहा था, जिससे नगर की सुन्दरता और भी बढ़ रही थी। झंडियाँ हिल रही थीं और छतों को चाँदी के चौड़े आधारों पर रखे सुनहरे कलशों से सजाया गया था। इस प्रकार भगवान् कृष्ण ने कुरुराज के राजसी नगर को देखा।

तात्पर्य : इस सम्बन्ध में श्रील प्रभुपाद कहते हैं, ''इस प्रकार भगवान् कृष्ण पाण्डवों के नगर में प्रविष्ट हुए, वहाँ के सुन्दर वातावरण का आनन्द लिया और धीरे-धीरे आगे बढ़ते गये।''

प्राप्तं निशम्य नरलोचनपानपात्र-
मौत्सुक्यविश्लथितकेशदुकूलबन्धाः ।
सद्यो विसृज्य गृहकर्म पतींश्च तल्पे
द्रष्टुं ययुर्युवतयः स्म नरेन्द्रमार्गे ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

प्राप्तम्—आया हुआ; निशम्य—सुन कर; नर—मनुष्यों के; लोचन—आँखों के; पान—पीने के; पात्रम्—वस्तु या आगार; औत्सुक्य—उत्सुकतावश; विश्लथित—ढीले हुए; केश—बाल; दुकूल—वस्त्रों के; बन्धाः—तथा गाँठें; सद्यः—तुरन्त; विसृज्य—त्याग कर; गृह—गृहस्थी के; कर्म—कार्य; पतीन्—अपने पतियों को; च—तथा; तल्पे—पलंग में; द्रष्टुम्—देखने के लिए; ययुः—गयी; युवतयः—युवतियाँ; स्म—निस्सन्देह; नर-इन्द्र—राजा के; मार्गे—पथ पर।

जब नगर की युवतियों ने सुना कि मनुष्यों के नेत्रों के लिए आनन्द के आगार भगवान् कृष्ण आए हैं, तो उन्हें देखने के लिए वे जल्दी जल्दी राजमार्ग तक पहुंच गईं। उन्होंने अपने घर के कार्यों (टहल) को त्याग दिया, यहाँ तक कि अपने पतियों को भी पलंग में ही छोड़ आईं। उत्सुकतावश उनके बालों की गाँठें तथा वस्त्र ढीले पड़ गये।

तस्मिन्सुसङ्कुल इभाश्वरथद्विपद्भिः
कृष्णम्सभार्यमुपलभ्य गृहाधिरूढाः ।
नार्यो विकीर्य कुसुमैर्मनसोपगुह्य
सुस्वागतं विदधुरुत्स्मयवीक्षितेन ॥ ३४॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उस (मार्ग) पर; सु—अत्यधिक; सङ्कुले—भीड़युक्त; इभ—हाथियों; अश्व—घोड़ों; रथ—रथों; द्वि-पद्भिः—तथा पैदल सिपाहियों से युक्त; कृष्णम्—कृष्ण को; स-भार्यम्—अपनी पत्नियों सहित; उपलभ्य—देखकर; गृह—घरों के; अधिरूढाः—छतों पर चढ़ीं; नार्यः—स्त्रियाँ; विकीर्य—बिखेर कर; कुसुमैः—फूलों से; मनसा—मनों में; उपगुह्य—आलिंगन करके; सु-स्वागतम्—हार्दिक स्वागत; विदधुः—उसे दिया; उत्स्मय—हँसती हुई; वीक्षितेन—चितवनों से।

राजमार्ग पर हाथियों, घोड़ों, रथों तथा पैदल सैनिकों की खूब भीड़ थी, इसलिए स्त्रियाँ अपने घरों की छतों पर चढ़ गईं, जहाँ से उन्होंने कृष्ण तथा उनकी रानियों को देखा। नगर की स्त्रियों ने भगवान् पर फूल बरसाये, मन ही मन उनका आलिंगन किया और हँसीयुक्त चितवनों से अपना हार्दिक स्वागत व्यक्त किया।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी की टीका है कि स्त्रियों ने अपनी स्नेहमयी चितवनों के माध्यम से भगवान् की यात्रा की सुविधा आदि के बारे में उत्सुक प्रश्न पूछे। दूसरे शब्दों में, अपने आनन्द में उन्होंने भगवान् की सेवा करने की तीव्र इच्छा व्यक्त की।

ऊचुः स्त्रियः पथि निरीक्ष्य मुकुन्दपत्नी-
स्तारा यथोडुपसहाः किमकार्यमूभिः ।
यच्चक्षुषां पुरुषमौलिरुदारहास-
लीलावलोककलयोत्सवमातनोति ॥ ३५॥

शब्दार्थ

ऊचुः—कहा; स्त्रियः—स्त्रियों ने; पथि—मार्ग पर; निरीक्ष्य—देखकर; मुकुन्द—भगवान् कृष्ण की; पत्नीः—पत्नियों को; ताराः—तारे; यथा—जिस तरह; उडु-प—चन्द्रमा; सहाः—साथ साथ; किम्—क्या; अकारि—किया गया था; अमूभिः—उनके द्वारा; यत्—क्योंकि; चक्षुषाम्—उनकी आँखों के लिए; पुरुष—पुरुषों के; मौलिः—चोटी; उदार—विस्तृत; हास—हँसी से; लीला—क्रीड़ायुक्त; अवलोक—चितवनोंका; कलया—लघु अंश से; उत्सवम्—उत्सव; आतनोति—प्रदान करता है।

मार्ग पर मुकुन्द की पत्नियों को चन्द्रमा के साथ तारों की तरह गुजरते देखकर स्त्रियाँ चिल्ला उठीं, ''इन स्त्रियों ने कौन-सा कर्म किया है, जिससे उत्तमोत्तम व्यक्ति अपनी उदार मुसकान तथा क्रीड़ायुक्त दीर्घ चितवनों से उनके नेत्रों को सुख प्रदान कर रहे हैं?''

तत्र तत्रोपसङ्गम्य पौरा मङ्गलपाणयः ।
चक्रुः सपर्यां कृष्णाय श्रेणीमुख्या हतैनसः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

तत्र तत्र—विविध स्थानों में; उपसङ्गम्य—पहुँच कर; पौराः—नगरवासी; मङ्गल—शुभ भेंटें; पाणयः—अपने हाथों में; चक्रुः—सम्पन्न किया; सपर्याम्—पूजा; कृष्णाय—कृष्ण के लिए; श्रेणी—व्यवसायियों के; मुख्याः—प्रमुख नेता; हत—विनष्ट; एनसः—पाप।

विभिन्न स्थानों पर नगरवासी अपने हाथों में कृष्ण के लिए शुभ भेंटें लेकर आये और प्रमुख निष्पाप व्यापारी भगवान् की पूजा करने के लिए आगे बढ़े।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''जब भगवान् कृष्ण मार्ग से जा रहे थे, तो शहर के कुछ धनी प्रतिष्ठित और निष्पाप नागरिकों ने नगर-प्रवेश के कारण उनका स्वागत करने के लिए भगवान् को शुभ वस्तुएँ भेंट कीं। इस तरह उन्होंने विनम्र सेवकों के रूप में उनकी पूजा की।''

अन्तःपुरजनैः प्रीत्या मुकुन्दः फुल्ललोचनैः ।
ससम्भ्रमैरभ्युपेतः प्राविशद्राजमन्दिरम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

अन्तः-पुर—रनिवास के; जनैः—लोगों के द्वारा; प्रीत्या—प्रेमपूर्वक; मुकुन्दः—भगवान् कृष्ण; फुल्ल—प्रफुल्ल; लोचनैः—आँखों से; स-सम्भ्रमैः—जोश में; अभ्युपेतः—स्वागत करने आईं; प्राविशत्—प्रवेश किया; राज—राजसी; मन्दिरम्—महल में।

प्रफुल्ल नेत्रों से अन्तःपुर के सदस्य भगवान् मुकुन्द का प्रेमपूर्वक स्वागत करने जोश से आगे बढ़े और इस तरह भगवान् राजमहल में प्रविष्ट हुए।

पृथा विलोक्य भ्रात्रेयं कृष्णं त्रिभुवनेश्वरम् ।
प्रीतात्मोत्थाय पर्यङ्कात्सस्नुषा परिषस्वजे ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

पृथा—रानी कुन्ती; विलोक्य—देख कर; भ्रात्रेयम्—अपने भाई के पुत्र; कृष्णम्—कृष्ण को; त्रि-भुवन—तीनों लोकों के; ईश्वरम्—स्वामी; प्रीत—प्रेमपूर्ण; आत्मा—हृदय; उत्थाय—उठ कर; पर्यङ्कात्—अपने पलंग से; स-स्नुषा—अपनी पुत्रवधू (द्रौपदी) सहित; परिषस्वजे—आलिंगन किया।

जब महारानी कुन्ती ने अपने भतीजे कृष्ण को, जो तीनों लोकों के स्वामी हैं, देखा तो उनका हृदय प्रेम से भर गया। वे अपनी पुत्रवधू सहित अपने पलंग से उठीं और उन्होंने भगवान् का आलिंगन किया।

तात्पर्य : महारानी कुन्ती की पुत्रवधू सुविख्यात द्रौपदी हैं।

गोविन्दं गृहमानीय देवदेवेशमादृतः ।
पूजायां नाविदत्कृत्यं प्रमोदोपहतो नृपः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

गोविन्दम्—भगवान् कृष्ण को; गृहम्—अपने घर में; आनीय—लाकर; देव—सारे देवताओं के; देव-ईशम्—परमेश्वर तथा नियन्ता; आदृतः—पूज्य; पूजायाम्—पूजा में; न अविदत्—नहीं जान पाये; कृत्यम्—विस्तृत क्रिया; प्रमोद—उनके अधिक हर्ष से; उपहतः—अभिभूत; नृपः—राजा।

देवताओं के परमेश्वर, भगवान् गोविन्द को राजा युधिष्ठिर अपने निजी निवासस्थान में ले आये। राजा हर्ष से इतने विभोर हो गये कि उन्हें पूजा का सारा अनुष्ठान विस्मृत हो गया।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''ज्योंही वे कृष्ण को महल के भीतर ले आये, राजा युधिष्ठिर हर्ष से इतने विभोर हो गये कि एक तरह से वे भूल ही गये कि कृष्ण का स्वागत करने तथा उनकी ठीक से पूजा करने के लिए उन्हें क्या करना चाहिए।''

पितृस्वसुर्गुरुस्त्रीणां कृष्णश्चक्रेऽभिवादनम् ।
स्वयं च कृष्णया राजन्भगिन्या चाभिवन्दितः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

पितृ—उनके पिता की; स्वसुः—बहन (कुन्ती) के; गुरु—गुरुजनों के; स्त्रीणाम्—तथा पत्नियों के; कृष्णः—भगवान् कृष्ण ने; चक्रे—सम्पन्न किया; अभिवादनम्—नमस्कार; स्वयम्—स्वयं; च—तथा; कृष्णया—कृष्णा (द्रौपदी) द्वारा; राजन्—हे राजा (परीक्षित); भगिन्या—अपनी बहन (सुभद्रा) द्वारा; च—भी; अभिवन्दितः—नमस्कार किये गये।

हे राजन्, भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी बुआ तथा उनके गुरुजनों की पत्नियों को नमस्कार किया। तब द्रौपदी तथा भगवान् की बहन ने उन्हें नमस्कार किया।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''भगवान् कृष्ण ने हर्षपूर्वक कुन्ती को तथा महल की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों को नमस्कार किया। वहीं पर उनकी छोटी बहन सुभद्रा भी द्रौपदी के साथ खड़ी थी। इन दोनों ने भगवान् के चरणकमलों पर अपना नमस्कार निवेदित किया।

श्वश्रूवा सञ्चोदिता कृष्णा कृष्णपत्नीश्च सर्वशः ।
आनर्च रुक्मिणीं सत्यां भद्रां जाम्बवतीं तथा ॥ ४१ ॥
कालिन्दीं मित्रविन्दां च शैब्यां नाग्नजितीं सतीम् ।
अन्याश्चाभ्यागता यास्तु वासःस्रङ्मण्डनादिभिः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

श्वश्रूवा—अपनी सास (कुन्ती) द्वारा; सञ्चोदिता—प्रोत्साहित; कृष्णा—द्रौपदी; कृष्ण-पत्नीः—कृष्ण की पत्नियाँ; च—तथा; सर्वशः—सारे लोग; आनर्च—पूजा की; रुक्मिणीम्—रुक्मिणी की; सत्याम्—सत्यभामा की; भद्राम् जाम्बवतीम्—भद्रा तथा जाम्बवती की; तथा—भी; कालिन्दीम् मित्रविन्दाम् च—कालिन्दी तथा मित्रविन्दा की; शैब्याम्—राजा शिबि की वंशजा; नाग्नजितीम्—नाग्नजिती की; सतीम्—सती; अन्याः—अन्य; च—भी; अभ्यागताः—वहाँ पर आये हुए; याः—जो; तु—तथा; वासः—वस्त्र समेत; स्रक्—फूल की माला; मण्डन—आभूषण; आदिभिः—इत्यादि से।

अपनी सास से अभिप्रेरित होकर द्रौपदी ने भगवान् कृष्ण की पत्नियों-रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती, कालिन्दी, शिबि की वंशजा मित्रविन्दा, सती नाग्नजिती को तथा वहाँ पर उपस्थित भगवान् की अन्य रानियों को नमस्कार किया। द्रौपदी ने वस्त्र, फूल-मालाएँ तथा रत्नाभूषण जैसे उपहारों से उन सबों का सत्कार किया।

सुखं निवासयामास धर्मराजो जनार्दनम् ।
ससैन्यं सानुगामत्यं सभार्यं च नवं नवम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

सुखम्—सुखपूर्वक; निवासयाम् आस—ठहराया; धर्म-राजः—धर्म के राजा युधिष्ठिर ने; जनार्दनम्—भगवान् कृष्ण को; स-सैन्यम्—सेना समेत; स-अनुग—सेवकों समेत; अमत्यम्—तथा मंत्रीगण; स-भार्यम्—अपनी पत्नियों सहित; च—तथा; नवम् नवम्—एक से एक नवीन।

राजा युधिष्ठिर ने कृष्ण के विश्राम का प्रबन्ध किया और इसका ध्यान रखा कि जितने सारे लोग उनके साथ आये हैं—यथा उनकी रानियाँ, सैनिक, मंत्री तथा सचिव—वे सुखपूर्वक ठहर जाँय। उन्होंने ऐसी व्यवस्था की कि जब तक वे पाण्डवों के अतिथि रूप में रहें, प्रतिदिन उनका नया नया स्वागत हो।

तात्पर्य : उपर्युक्त भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत *श्रीकृष्ण* से लिया गया है।

तर्पयित्वा खाण्डवेन वह्निं फाल्गुनसंयुतः ।
मोचयित्वा मयं येन राज्ञे दिव्या सभा कृता ॥ ४४ ॥
उवास कतिचिन्मासान्राज्ञः प्रियचिकीर्षया ।
विहरन्रथमारुह्य फाल्गुनेन भटैर्वृतः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

तर्पयित्वा—तुष्ट करके; खाण्डवेन—खाण्डव वन सहित; वह्निम्—अग्निदेव को; फाल्गुन—अर्जुन द्वारा; संयुतः—साथ में; मोचयित्वा—छुड़ाकर; मयम्—मय दानव को; येन—जिसके द्वारा; राज्ञे—राजा (युधिष्ठिर) के लिए; दिव्या—दैवी; सभा—सभाभवन; कृता—बनाया गया; उवास—वे रहते रहे; कतिचित्—कई; मासान्—महीने; राज्ञः—राजा को; प्रिय—खुशी; चिकीर्षया—देने की इच्छा से; विहरन्—विहार करते; रथम्—रथ में; आरुह्य—चढ़ कर; फाल्गुनेन—अर्जुन सहित; भटैः—रक्षकों द्वारा; वृतः—घिरे।

राजा युधिष्ठिर को तुष्ट करने की इच्छा से भगवान् कई मास इन्द्रप्रस्थ में रहते रहे। अपने आवास-काल के समय उन्होंने तथा अर्जुन ने अग्निदेव को खाण्डव वन भेंट करके तुष्ट किया। उन्होंने मय दानव को बचाया जिसने बाद में राजा युधिष्ठिर के लिए दैवी सभाभवन बनाया। अर्जुन के साथ सैनिकों से घिर कर भगवान् ने अपने रथ पर सवारी करने के अवसर का भी लाभ उठाया।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद *श्रीकृष्ण* में लिखते हैं, ''इसी समय भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन की सहायता से अग्निदेव की तुष्टि के लिए अग्निदेव को खाण्डव वन निगलने की अनुमति दी। वन में प्रज्ज्वलित अग्नि के मध्य श्रीकृष्ण ने मयासुर की रक्षा की, जो जंगल में छिपा था। अपने बचाये जाने पर मयासुर ने स्वयं पाण्डवों एवं भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति आभार माना तथा उसने इन्द्रप्रस्थ में एक अद्‌भुत सभाभवन का निर्माण किया। इस प्रकार युधिष्ठिर को प्रसन्न करने के लिए वे महीनों इन्द्रप्रस्थ में रहे। अपने निवास की अवधि में श्रीकृष्णको इधर-उधर भ्रमण में बड़ा आनन्द आया। वे अर्जुन के साथ रथ में जाया करते थे और अनेक वीर तथा सैनिक उनके पीछे पीछे चलते थे।''

इस प्रकार श्रीमद्‌भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''भगवान् की इन्द्रप्रस्थ यात्रा'' नामक इकहत्तरवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।